श्री लक्ष्मणजी का क्रोध

चौपाई :

*** रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥ कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥1॥

भावार्थ:

रघुवंशियों में कोई भी जहाँ होता है, उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुल शिरोमणि श्री रामजी को उपस्थित जानते हुए भी जनकजी ने कहे हैं॥1॥

*** सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥ जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥2॥

भावार्थ:

हे सूर्य कुल रूपी कमल के सूर्य! सुनिए, मैं स्वभाव ही से कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं, यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ॥2॥

***काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥ तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥3॥

भावार्थ:

और उसे कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ, हे भगवन्! आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज है॥3॥

*** नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ॥ कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥4॥

भावार्थ:

ऐसा जानकर हे नाथ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिए। धनुष को कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर उसे सौ योजन तक दौड़ा लिए चला जाऊँ॥4॥

दोहा :

*** तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ। जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥253॥

भावार्थ:

हे नाथ! आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभु के चरणों की शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकस को कभी हाथ में भी न लूँगा॥253॥

चौपाई :

*** लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥ सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥1॥

भावार्थ:

ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोध भरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी काँप गए। सभी लोग और सब राजा डर गए। सीताजी के हृदय में हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गए॥1॥

*** गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥ सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥2॥

भावार्थ:

गुरु विश्वामित्रजी, श्री रघुनाथजी और सब मुनि मन में प्रसन्न हुए और बारबार पुलकित होने लगे। श्री रामचन्द्रजी ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया॥2॥

*** बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥ उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥3॥

भावार्थ:

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले- हे राम! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात! जनक का संताप मिटाओ॥3॥

*** सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥ ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥4॥

भावार्थ:

गुरु के वचन सुनकर श्री रामजी ने चरणों में सिर नवाया। उनके मन में न हर्ष हुआ, न विषाद और वे अपनी ऐंड़ (खड़े होने की शान) से जवान सिंह को भी लजाते हुएसहज स्वभाव से ही उठ खड़े हुए ॥4॥

दोहा :

*** उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥254॥

भावार्थ:

मंच रूपी उदयाचल पर रघुनाथजी रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब संत रूपी कमल खिल उठे और नेत्र रूपी भौंरे हर्षित हो गए॥254॥

चौपाई :

*** नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥ मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥1॥

भावार्थ:

राजाओं की आशा रूपी रात्रि नष्ट हो गई। उनके वचन रूपी तारों के समूह का चमकना बंद हो गया। (वे मौन हो गए)। अभिमानी राजा रूपी कुमुद संकुचित हो गए और कपटी राजा रूपी उल्लू छिप गए॥1॥

*** भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥ गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्हसन आयसु मागा॥2॥

भावार्थ:

मुनि और देवता रूपी चकवे शोकरहित हो गए। वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं। प्रेम सहित गुरु के चरणों की वंदना करके श्री रामचन्द्रजी ने मुनियोंसे आज्ञा माँगी॥2॥

*** सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥ चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥3॥

भावार्थ:

समस्त जगत के स्वामी श्री रामजी सुंदर मतवाले श्रेष्ठ हाथी की सी चाल से स्वाभाविक ही चले। श्री रामचन्द्रजी के चलते ही नगर भर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो गए और उनके शरीर रोमांच से भर गए॥3॥

*** बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥ तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥4॥

भावार्थ:

उन्होंने पितर और देवताओं की वंदना करके अपने पुण्यों का स्मरण किया। यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं! रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को कमल की डंडी की भाँति तोड़ डालें॥4॥

दोहा :

*** रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ। सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥255॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी को (वात्सल्य) प्रेम के साथ देखकर और सखियों को समीप बुलाकर सीताजी की माता स्नेहवश बिलखकर (विलाप करती हुई सी) ये वचन बोलीं-॥255॥

चौपाई :

*** सखि सब कौतुक देख निहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥ कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥1॥

भावार्थ:

हे सखी! ये जो हमारे हितू कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखने वाले हैं। कोई भी (इनके) गुरु विश्वामित्रजी को समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक हैं, इनके लिए ऐसा हठ अच्छा

नहीं। (जो धनुष रावण और बाण- जैसे जगद्विजयी वीरों के हिलाए न हिल सका, उसे तोड़ने के लिए मुनि विश्वामित्रजी का रामजी को आज्ञा देना और रामजी का उसे तोड़ने के लिए चल देना रानी को हठ जान पड़ा, इसलिए वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्रजी को कोई समझाता भी नहीं)॥1॥

*** रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥ सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥2॥

भावार्थ:

रावण और बाणासुर ने जिस धनुष को छुआ तक नहीं और सब राजा घमंड करके हार गए, वही धनुष इस सुकुमार राजकुमार के हाथ में दे रहे हैं। हंस के बच्चे भी कहींमंदराचल पहाड़ उठा सकते हैं?॥2॥

*** भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥ बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥3॥

भावार्थ:

(और तो कोई समझाकर कहे या नहीं, राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरु को समझाने की चेष्टा करनी चाहिए थी, परन्तु मालूम होता है-) राजा का भी सारा सयानापन समाप्त हो गया। हे सखी! विधाता की गति कुछ जानने में नहीं आती (यों कहकर रानी चुप हो रहीं)। तब एक चतुर (रामजी के महत्व को जानने वाली) सखी कोमल वाणी से बोली- हे रानी! तेजवान को (देखने में छोटा होने पर भी) छोटा नहीं गिनना चाहिए॥3॥

*** कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा।सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥ रबि मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥4॥

भावार्थ:

कहाँ घड़े से उत्पन्न होने वाले (छोटे से) मुनि अगस्त्य और कहाँ समुद्र? किन्तु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसार में छाया हुआ है। सूर्यमंडलदेखने में छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अंधकार भाग जाता है॥4॥

दोहा :

*** मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब। महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥256॥

भावार्थ:

जिसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं, वह मंत्र अत्यन्त छोटा होता है। महान मतवाले गजराज को छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है॥256॥

चौपाई :

*** काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपनें बस कीन्हे॥ देबि तजिअ संसउ अस

जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥1॥
भावार्थ:
कामदेव ने फूलों का ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकों को अपने वश में कर रखा है। हे देवी! ऐसा जानकर संदेह त्याग दीजिए। हे रानी! सुनिए, रामचन्द्रजी धनुष को अवश्य ही तोड़ेंगे॥1॥
*** सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥ तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥2॥
भावार्थ:
सखी के वचन सुनकर रानी को (श्री रामजी के सामर्थ्य के संबंध में) विश्वास हो गया। उनकी उदासी मिट गई और श्री रामजी के प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उस समय श्री रामचन्द्रजी को देखकर सीताजी भयभीत हृदय से जिस-तिस (देवता) से विनती कर रही हैं॥2॥
*** मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥ करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥3॥
भावार्थ:
वे व्याकुल होकर मन ही मन मना रही हैं- हे महेश-भवानी! मुझ पर प्रसन्न होइए, मैंने आपकी जो सेवा की है, उसे सुफल कीजिए और मुझ पर स्नेह करके धनुष केभारीपन को हर लीजिए॥3॥
*** गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥ बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥4॥
भावार्थ:
हे गणों के नायक, वर देने वाले देवता गणेशजी! मैंने आज ही के लिए तुम्हारी सेवा की थी। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत ही कम करदीजिए॥4॥
दोहा :
*** देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर। भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥257॥
भावार्थ:
श्री रघुनाथजी की ओर देख-देखकर सीताजी धीरज धरकर देवताओं को मना रही हैं। उनके नेत्रों में प्रेम के आँसू भरे हैं और शरीर में रोमांच हो रहा है॥257॥
चौपाई :
*** नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥ अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥1॥
भावार्थ:
अच्छी तरह नेत्र भरकर श्री रामजी की शोभा देखकर, फिर पिता के प्रण का स्मरण करके सीताजी का मन क्षुब्ध हो उठा। (वे मन ही मन कहने लगीं-) अहो! पिताजी ने बड़ा ही कठिन हठ ठाना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं॥1॥

*** सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥ कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥2॥

भावार्थ:

मंत्री डर रहे हैं, इसलिए कोई उन्हें सीख भी नहीं देता, पंडितों की सभा में यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्र से भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमल शरीर किशोर श्यामसुंदर!॥2॥

*** बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥ सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥3॥

भावार्थ:

हे विधाता! मैं हृदय में किस तरह धीरज धरूँ, सिरस के फूल के कण से कहीं हीरा छेदा जाता है। सारी सभा की बुद्धि भोली (बावली) हो गई है, अतः हे शिवजी के धनुष! अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है॥3॥

*** निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥ अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥4॥

भावार्थ:

तुम अपनी जड़ता लोगों पर डालकर, श्री रघुनाथजी (के सुकुमार शरीर) को देखकर (उतने ही) हल्के हो जाओ। इस प्रकार सीताजी के मन में बड़ा ही संताप हो रहा है। निमेष का एक लव (अंश) भी सौ युगों के समान बीत रहा है॥4॥

दोहा :

*** प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥258॥

भावार्थ:

प्रभु श्री रामचन्द्रजी को देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई सीताजी के चंचल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो चन्द्रमंडल रूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हों॥258॥

चौपाई :

*** गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥ लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥1॥

भावार्थ:

सीताजी की वाणी रूपी भ्रमरी को उनके मुख रूपी कमल ने रोक रखा है। लाज रूपी रात्रि को देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रों का जल नेत्रों के कोने (कोये) में ही रह जाता है। जैसे बड़े भारी कंजूस का सोना कोने में ही गड़ा रह जाता है॥1॥

*** सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥ तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥2॥

भावार्थ:

अपनी बढ़ी हुई व्याकुलताजानकर सीताजी सकुचा गईं और धीरज धरकर हृदय में विश्वास ले आईं कि यदि तन, मन और वचन से मेरा प्रण सच्चा है और श्री रघुनाथजी के चरण कमलों में मेरा चित्त वास्तव में अनुरक्त है,॥2॥

*** तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥ जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥3॥

भावार्थ:

तो सबके हृदय में निवास करने वाले भगवान मुझे रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी कीदासी अवश्य बनाएँगे। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥3॥

*** प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥ सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥4॥

भावार्थ:

प्रभु की ओर देखकर सीताजी ने शरीर के द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् यह निश्चय कर लिया कि यह शरीर इन्हीं का होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं) कृपानिधान श्री रामजी सब जान गए। उन्होंने सीताजी को देखकर धनुष की ओर कैसे ताका, जैसे गरुड़जी छोटे से साँप की ओर देखते हैं॥4॥

दोहा :

*** लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु। पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥259॥

भावार्थ:

इधर जब लक्ष्मणजी ने देखा कि रघुकुल मणि श्रीरामचन्द्रजी ने शिवजी के धनुष की ओर ताका है, तो वे शरीर से पुलकितहो ब्रह्माण्ड को चरणों से दबाकर निम्नलिखित वचन बोले-॥259॥

चौपाई :

***दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥ रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥1॥

भावार्थ:

हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेष! हे वाराह! धीरज धरकर पृथ्वी को थामे रहो, जिससे यह हिलने न पावे। श्री रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहतेहैं। मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ॥1॥

*** चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥ सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी जब धनुष के समीप आए, तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सबका संदेह और अज्ञान, नीच राजाओं का अभिमान॥2॥

*** भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥ सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥3॥

भावार्थ:

परशुरामजी के गर्व की गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता (भय), सीताजी का सोच, जनक का पश्चाताप और रानियों के दारुण दुःख का दावानल॥3॥

*** संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥ राम बाहुबल सिंधु अपारू।चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥4॥

भावार्थ:

ये सब शिवजी के धनुषरूपी बड़े जहाज को पाकर, समाज बनाकर उस पर जा चढ़े। ये श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल रूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है॥4॥

दोहा :

*** राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि। चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥260॥

भावार्थ:

श्री रामजी ने सब लोगों की ओर देखा और उन्हें चित्र में लिखे हुए सेदेखकर फिर कृपाधाम श्री रामजी ने सीताजी की ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना॥260॥